नारी विमर्श : एक दृष्टिकोण

गोविंदभाई के. मुंधवा

आज भले ही हम साक्षरता की ओर बढ़े हों, परन्तु हमारी शिक्षा नीतियाँ आज भी परवान नहीं चढ़ पायी हैं, उनका स्त्राी शिक्षा पर कोई खास असर नहीं दिखायी पड़ता है। जब पहली बार शिक्षा के सन्दर्भ में यह सवाल पूछा जा रहा है कि यदि हमारी शिक्षा नीति सही थी तो लड़कियों के स्कूलों की बढ़ती के बावजूद अपेक्षित सामाजिक विकास क्यों नहीं हुआ। शिक्षित मध्यम वर्ग में एक ओर क्यों दहेज हत्या, युवा स्त्रियों द्वारा आत्महत्या, बलात्कार और स्त्रियों के प्रति गम्भीर हिंसात्मक वारदातों में इजाफा हुआ ह। दूसरी ओर कन्या शिशुओं और स्त्राओं की मृत्युदर क्यों नहीं घटी? इसके साथ ही बुनियादी शिक्षा अधूरी छोड़ने वाली लड़कियों का प्रतिशत अभी भी इतना ऊंचा क्यों है। हमारे समाज में आज भी मर्दों का बोलबाला है। औरतें उनके जुल्म के खिलाफ आवाज़ नहीं उठा पाती हैं। नारी शक्ति का स्रोत मानी गयी है, इस शक्ति का वर्णन भारतीय साहित्य में बराबर किया जाता रहा है। प्रश्न यहीं से प्रारम्भ होता है। जिसे हम शक्ति का पर्याय मानते हैं, उसी में चेतना जगाने की आवश्यकता क्यों? नारी समानता के नारों ने भी इस घाव पर मरहम नहीं लगाया? समाज द्वारा निर्धारित नारी अधिकार बार–बार तनिक से स्पर्श से धुंधला जाते हैं। वैसे तो यह पूरे विश्व की समस्या है, परन्तु भारत में स्थिति कुछ अधिक जटिल है। भारत की स्त्रियों का गुण उनका समर्पण है। समाज ने इसका दुरुपयोग किया है, यही समस्या की जड है। नारी चेतना एक ऐसी अवधारणा है जो सामाजिक न्याय एवं जनतांत्रिाक संरचनाओं के संघर्षों से विकसित हुई है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से आज तक नारी की स्थिति बार–बार बदलती रही है। वैदिक काल में नारियों का जीवन स्वतंत्रा एवं विकासोन्मुखी था।

"यत्रा नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रा देवताः।
यत्रौतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।"

आज हम भले ही यह कहें कि हमारे देश में स्त्रियों की दशा पहले से बेहतर है, परन्तु उसकी तुलना वैदिक काल से नहीं की जा सकती– "इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वैदिक आर्यों के बीच नारी की स्थिति इतनी ऊँची थी कि आज बीसवीं सदी के संसार का अधिक से अधिक सुसंस्कृत राष्ट्र भी यह दावा नहीं कर सकता कि उसने नारी को इतना ऊंचा स्थान प्रदान किया है।" भारत के अन्दर आज स्थिति पहले से बदल चुकी है तथा स्त्रियों को कई तरह की हिंसा का सामना करना पड़ता है। जिसका वो बाहर जिक्र तक नहीं कर पाती। "देश की 37 फीसदी महिलाएं भी इसकी शिकार हैं, हमारे यंहा इस तरह की घटनाओं को पहले तो दबाने की कोशिश होती है, फिर प्रकाश में आ जाने पर पीड़िता को न्याय और दोषी को दण्ड दिलवाने की पेशकश के बजाए आमतौर पर स्त्रियों को ही अपने ऊपर किसी आचरण से हिंसा न्योतने का दोषी मान लिया जाता है।"

आज महिलाओं के प्रति सामाजिक मानसिकता काफी तुच्छ प्रकृति की हो गयी है। सत्ताधारियों तथा समाज के ठेकेदारों द्वारा उनको न तो इंसाफ मिल पाता है, न सम्मान! उल्टा उन्हें दुतकार दिया जाता है। आज कई स्त्रियों की स्थिति 'फट जा पंचधार' की रक्खी के समान है जो समाज को कोसती रहती है। "हरियाणा राज्य के कई खाप पंचायतों के महिला विरोधी फतवों और लड़कियों के लगातार घटते अनुपात पुरुष/महिला 1000/762 के चलते लोग अपने घरों में बेटी का जन्म नहीं चाहते। यही नहीं अब एक पूर्व मुख्यमंत्राी जी की ताजा सलाह है कि इज्ज़तदार लोगों को अपनी लड़कियों को रेप केस से बचाना है तो वे खाप पंचायतों की सलाह मानें और उनकों जल्द से जल्द ब्याह दें। अचरज क्या कि इस मानसिकता वाले नेताओं के राज्य में एक दलित लड़की के साथ गैंगरेप होने के बाद जब उसे कोई न्याय नहीं मिला तो वह जल मरी। महिलाएं चिल्लाती रहें, उनकी कौन

सुनता है, उल्टे थानों से लेकर पड़ोसी तक उनको और अधिक भोक्या मान लेते हैं। जब थाने मे दर्ज किए जाने से लेकर अदालत में बलात्कारी को दण्ड मिलना न मिलना अक्सर इस बात पर निर्भर है कि बलात्कारी पीड़िता दलित थी कि सवर्ण? उत्पीड़न उसकी जाति के लोगों ने किया था कि दूसरी जाति समुदाय वालों ने! उस बलात्कार का आरोपी कोई जाना–माना व्यक्ति है या सड़क छाप चरसी? ऐसे में देश के कानून के तहत आप बलात्कार के लिए मृत्यु दंड का भी प्रावधान करा दें वह कागज पर ही रह जायेगा और बलात्कारी फिर भी दण्ड का सहजभागी नहीं माना जायेगा। समरथ को नहिं दोष गुसाई।"

हमारे पहाड़ी परिवेश में भी औरतों की स्थिति काफी दयनीय रही है तथा उन्हे काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ''भारतीय समाज में यूं तो हर कहीं स्त्राी दशा पुरुष की तुलना में बदतर रही है, लेकिन पहाड़ के सामंती परिवेश ने उस करेले पर नीम का काम किया है। उनके मात्रा टेहरी रियासत में रियासती आजादी के बाईस सालों तक जनता को वहाँ उन सामंती कानूनां नरेन्द्र हिन्दु लॉ को ढोना पड़ा, जिनके तहत औरत को घर की पूरी जिम्मेदारी उठाने के बाद भी पति की सम्पत्ति में हिस्सा पाने का कोई हक नहीं होता था। खेत–खलिहानों में खटती हुई, वादियों, वीरानों में पशु चराती, चारा ईधन बीनती, पुलिस–पतरौल की हिसा और हवस का शिकार बनती वह निरीह जीव जिसे उसके अपने परिवार वाले भी पैसे के बदले बेचने से बाज नहीं आते।"

आज हमारे परिवारों में पितृसत्तामक भावना पनपी हुई है, बेटों के प्रति सहानुभूति तथा बेटियों के प्रति माताओं का व्यवहार भी स्त्राी प्रगति में एक बाधा साबित हो रहा है। ''बेटों को तो हमेशा माँ से अपने पुरुषत्व के बारे में लगातार सकारात्मक और उत्साहवर्धक संकेत मिलते हैं। इसलिए वे उम्रभर भावना विगलित कृतज्ञता के साथ अपनी माँ को याद करते हैं, इसके उलट माँ से नारीत्व पर लगातार नकारात्मक संदेश पाने वाली अनेक किशोरवय की बेटियों के मन में माँ में प्यार भरी सकारात्मकता पर उसकी वर्जनाओं और फटकार की स्मृतियां हावी हो रहती हैं, यही कारण है कि बेटियों और माओं के बीच एक तरह की खीझ भरी तनातनी बन जाती है।"

आज जहाँ हमारे देश में कन्या भ्रूण जैसे मद्दों से निपटने के लिए कानून तो बन रहे हैं पर उनका कोई खास असर दिखायी नहीं देता है और स्थिति जस की तस बनी हुई है। ''बेटियों के प्रति समाज का नज़रिया नहीं बदला है आज भी कई प्रदेशों में नवजात बच्चियों को जहर देकर या दफनाकर मारा जाता है।" हमारे देश के विकास कार्यों में भी महिलाओं की अनदेखी की जाती है तथा उनको वह सुविधाएं नहीं दी जाती, जिससे उनका विकास हो तथा उन पर कोई उंगली न उठा पाये।" सार्वजनिक पार्कों या समुद्र तटों में बैठने की जगहों, शौचालयों या चढ़ते उतरने में आसान बसों, शेल्टरों तथा पुलिसिया निगरानी की योजनाएं बनाते समय महिलाओं का ख्याल नहीं रखा जाता। खुले आसमान तले किसी पार्क या मैदान में इधर–उधर घूमती या बैठी हुई अकेली अपरिचित माता, भाभी, बहन, कैटेगरी से बहार की युवा औरत अधिकतर शहरी निगाहों में संदिग्ध माल है।"

जब तक समाज में ऐसी मानसिकता रहेगी तब तक हम आगे बढ़ नहीं सकते हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी जो रिपोर्ट पेश हो रही है, उसमें भी नारी विवशता को बखूबी दर्शाया जा रहा है। "अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ आई. एल. ओ.) की ताजा रपट के अनुसार पुरुषों के बराबर और राजनैतिक सत्ता पाने में औरतों को अभी हजार बरस लगेंगे। खुद संयुक्त राष्ट्र संघ के 179 सदस्य देशों में से मात्रा छह की अध्यक्षता महिलाओं के हाथ में है और मंत्रिामण्डलों में भी उनकी सदस्यता का प्रतिशत मात्रा तीन दशमलव पांच पाया गया।"

आज भले ही हम साक्षरता की ओर बढ़े हों, परन्तु हमारी शिक्षा नीतियाँ आज भी परवान नहीं चढ़ पायी हैं, उनका स्त्राी शिक्षा पर कोई खास असर नहीं दिखायी पड़ता है। ''जब पहली बार शिक्षा के सन्दर्भ में यह सवाल पूछा

जा रहा है कि यदि हमारी शिक्षा नीति सही थी तो लड़कियों के स्कूलों की बढ़ती के बावजूद अपेक्षित सामाजिक विकास क्यों नहीं हुआ। शिक्षित मध्यम वर्ग में एक ओर क्यों दहेज हत्या, युवा स्त्रियों द्वारा आत्महत्या, बलात्कार और स्त्रियों के प्रति गम्भीर हिंसात्मक वारदातों में इजाफा हुआ है। दूसरी ओर कन्या शिशुओं और स्त्राओं की मृत्युदर क्यों नहीं घटी? इसके साथ ही बुनियादी शिक्षा अधूरी छोड़ने वाली लड़कियों का प्रतिशत अभीभी इतना ऊंचा क्यों है।" हमारे समाज में आज भी मर्दों का बोलबाला है। औरतें उनके जुल्म के खिलाफ आवाज़ नहीं उठा पाती हैं। ''हम आरतें क्या जानती हैं, हम कमरतोड़ काम पर जाती हैं। घर लौट आती हैं, दिनभर बाहर खट के फिर हम बच्चों मे खाना पकाने में खटती हैं। मर्द तो सब कुछ जानते हैं। पर वे काम के बाद कहीं भी जाकर अरक पीने बैठ जायेंगे। लक्षम्मा अपनी आभरण रहित बहुओं के लिए रोती हैं, जिनके जेवर दारु के ठेके पहुँच गये। उसके अपने कान के सोने के बुन्दे बचे हैं क्योंकि उसका मर्द पी–पा कर चल बसा है।"

मर्दों द्वारा शराब पीकर उन पर जुल्म किया जाता रहा है। जबकि वो मर्दो की ही तरह घर की जिम्मेदारियां सम्भालती हैं फिर उनके साथ ही भेदभाव वाला बर्ताव क्यों? ''स्त्रियों को कमजोर और पराधीन बनाने की कोशिशें पहले उनके ही घर–आंगनों से शुरु होती और दहलीज लांघने के बाद कार्यक्षेत्रा में वही कोशिशें उनके आगे ताकतवर और सामूहिक पुरुष–एकाधिकार की शक्ल धारण करती चली जाती है। विडम्बना यह कि एक ओर तो स्त्राी में पराधीन और सहनशील बनने की महता का बीज बचपन से रोपा जाता है और दूसरी ओर उसकी पराधीनता और सहनशीलता की मार्फत उसकी शक्ति का पूरा दोहन और नियोजन खुद उसी के और स्त्राी जाति के विरोध में किया जाता है। नतीजतन एक स्त्राी हर क्षत्रा में दोयम दर्जे में बैठने को बाध्य की जाती है कि तुम्हारी नियति यही है।"

इन सभी चली आ रही परम्परागत धारणाओं को बदलकर आगे बढ़ना होगा। हमारे समाज में आज भी दलित तथा पिछड़ी महिलाओं को दूसरी दृष्टि से देखा जाता है तथा समाज के ठेकेदारों द्वारा उन पर शिकंजा कसा जाता रहा है। ''राजस्थान की बस्ती तहसील के इस लगभग अचर्चित गांव में जाति से कुम्हार भवरीबाई, साथिन समाज सेविका का काम करती है। सरकारी प्रोत्साहन पर अपने गांव में गैर कानूनी बाल–विवाह रोकने का बीड़ा उठाने वाली भंवरी को इस सामाजिक पुनरुत्थान कार्य के एवज में समाज के ठेकेदारों से पुरस्कार मिला पहले आर्थिक ओर सामाजिक बहिष्कार और अन्ततः सामूहिक बलात्कार के रूप में। भंवरी बाई को तो झूठा और पराया करार दे दिया गया, साथ ही उसके पति और बच्चों को भी जाति समाज से परे कर दिया गया। अन्ततः जीत भवरी बाई की हुई। मैं खुश हूं कि मैं अड़ सकी। मैं लड़ सकी। अन्याय के आगे झुकना नहीं और अपनी सचाई पर अड़े रहना है। इसकी एक मिसाल बनकर उभरी है भंवरी बाई।"

भंवरी बाई जैसी औरतों से प्रेरणा लेकर आज महिलाओं को आत्मनिर्भर तथा निडर बनने की आवश्यकता है जिससे वो अपनी आवाज़ खुद बनने की हिम्मत जुटा सकें। ''सच तो यह है कि हमारे यहाँ अब तक पुरुष द्वारा स्त्राी के प्रति क्रूरता दिखाने को पुरुषत्व की एक वैसी ही सहज और समाज स्वीकृत अभिव्यक्ति का दर्जा दिया जाता रहा है। जैसा कि पुरुष द्वारा पीटने और दबे रहने का स्त्रीत्व की, जब तक समाज में, कार्यपालिका में और समाज सुधार संगठनों में एक साथ इसका प्रतिकार नहीं होगा। तब तक हमारा समाज पुच्छ–विषाणुयुक्त पशुओं से भी निकृष्ठ रहेगा।"

समाज से उन समस्त बुराइयों को नष्ट करना होगा जो हमें उन रूढ़िवादी विचारधाराओं म बांधे रखे हैं। ''महिलाओं के खिलाफ भेदभाव की वह व्यवस्था खत्म की जाए जो मां के पेट से भ्रूण–हत्या के रूप में शुरु हो जाती है और बचपन, जवानी, बुढ़ापे से लेकर मौत तक चलती है। हम एक ऐसा समाज क्यों नहीं बना सकते, जिसमें महिलाएं आज़ादी के साथ सुरक्षित घूम सकें। घर में बन्द रहने पर महिलाओं में हिम्मत और आत्मविश्वास नहीं आएगा और वे आसानी से शिकार बन जायेंगी। यदि महिलाओं पर बहुत ज्यादा पाबंदी लगाऐंगे तो ज्यादा

विकृतियां पैदा होंगी। खाप पंचायतों और सम्मान के लिए बेटी की हत्या जैसी क्रूरताएं होंगी, यदि अमेरिका यूरोप एक अति हैं तो तालिबानी समाज दूसरी अति हैं। हमें दोनो से अलग एक सहज–कुंठा मुक्त संबधों वाला समाज बनाना चाहिए।"

आज स्त्री आई.पी.एस. ऑफिसर से लेकर वैज्ञानिक, डॉक्टर आदि क्षेत्रों में अपनी पहचान बना चुकी हैं तथा देश की राजनीति में भी महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य कर चुकी हैं फिर भी समाज के अन्दर नारी आज दोराहे पर खड़ी दिखाई देती है। प्रथम वह जो रुढ़िवादी, परम्परावादी परिवार से जुड़ी हुई है उसकी लक्ष्मण रेखा केवल घर, चौखट तक सीमित है, दूसरी वह जो आधुनिक व स्वछन्द है तथा अपने भविष्य के निर्णय के लिए स्वतन्त्रा है। स्त्री स्वयं के लिए निर्णय ले यह तो सही है। इसके लिए उसे अपनी परम्परावादी एवं रुढ़िवादी विचार–धारा को बदलना होगा और इसी के साथ उसको अपने आदर्शो व संस्कार की परम्परा को भी बनाये रखना होगा ताकि वो भी खण्डित न होन पाये।

आज देश समाज से उन समस्त धारणाओं को खत्म करना होगा जो नारी विरोधी हैं, नारियों को समाज में परिवर्तन लाने के लिए सबसे पहले खुद में परिवर्तन लाना होगा। अगर नारी शिक्षित होगी तो वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होगी तथा देश समाज के अन्दर वह किसी के परिचय की मोहताज नहीं होगी। समाज के सत्ताधारियों तथा ठेकेदारों को भी अपनी मानसिकता नारी के प्रति बदलनी होगी। आज इन सब के लिए जरुरत है तो एक सकारात्मक सोच और दृष्टिकोण की जो समाज मे नारी उत्थान में सहायक सिद्ध होगी।

सोच को बदलो, सितारे बदल जायेंगे।
नज़र को बदलो, नज़ारे बदल जायेंगे।
कश्तियां बदलने की जरूरत नहीं।
दिशाओं को बदलो किनारें बदल जायेंगे।।

संदर्भग्रंथ

1. मनु –स्मृति, 3.56
2. उपाध्याय, रामजी प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति, पृ. 13
3. पाण्डे, मृणाल लेख–अमर उजाला, देहरादून, प्रकाशित 2 अक्टूबर 2011, पृ. 16
4. वही, लेख–अमर उजाला, 14 अक्टूबर 2012, पृ. 16
5. वही, लेख–अमर उजाला, 19 फरवरी 2012, पृ. 12
6. वही, लेख–अमर उजाला, 13 मई 2012, पृ. 12
7. सिंह, तवलीन लेख–अमर उजाला, 5 फरवरी 2012, पृ. 12
8. पाण्डे, मृणाल लेख–अमर उजाला, 5 फरवरी 2012, पृ. 12
9. वही, परिधि पर स्त्री, पृ. 29
10. वही, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृ. 128
11. वही, परिधि पर स्त्री, पृ. 31
12. वही, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, आवरण
13. वही, परिधि पर स्त्री, पृ. 39
14. वही, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृ. 73